ॐ REGD. NO. L. 2077

भक्ति

वर्ष १] अङ्क १२]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

भगवद्भक्ति विमुखानां शास्त्र गर्तेषु मुह्यताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात् तेषां जन्म शतैरपि ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

भाद्रपद सम्वत् १९८४ ।

निम्न लिखित महानुभाओं ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राय साहब श्री बल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलजारबाग़, पटना १०१)

२. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)

३. श्रीमान् धाय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलदर राज्य ५१)

४ राव श्रीराम रईस नांगल २५)

५. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)

६. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)

७. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)

८. बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स पटना यू० पी०। २५)

९. श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्युनिसपल कमेटी पलवल। ११)

२. श्रीमती उमरावकोर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल ११)

३. महाराय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)

४. बा० ब्रजलाल जी शिरस्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, जींद। ५)

ॐ

"कर्त्तातु केवला भक्तिः" ।

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादकः-

भक्ति

एक प्रति का ।)

स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका ।

वर्ष १ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, भाद्रपद पूर्णिमा सं० १६८४ । { अङ्क १२

॥ मंगलाचरणम् ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे। अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवोभव ॥ १ ॥

हे अग्ने परमात्मन् ! दीप्तिका कारण जो तुम्हारी तेज स्वरूप ज्वाला है उसको नमस्कार हो ।तुम्हारी यह ज्वाला हमारे दुर्वृत्तों को सन्तप्त करे । हमारे निमित्त तुम्हारा पावक नाम और शिव नाम सार्थक हो ॥ १ ॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २ ॥

हे भगवान् ! आपके विद्युत रूप के निमित नमस्कार हो, गर्जना रूप आपके निमित्त नमस्कार है । आप स्वर्ग सुख देने की चेष्टा करते हो इस कारण आप के निमित्त बारम्बार नमस्कार हो ॥ २ ॥

सुमित्रियानः आपः ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयन्द्विष्मः ॥ ३ ॥

हे वरुण ! आपके राज्य में हम लोगों को जल और ओषधियां श्रेष्ठ मित्र के तुल्य हों । जो हम लोगों से वैर रखता है और हम लोग जिससे वैर करते है उस के लिये वे ओषधियां दुःख देने वाले शत्रु के तुल्य हों ॥ ३ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नो अस्तु द्विपदे शञ्चतुष्पदे ॥ ४ ॥

सब का स्वमी परमेश्वर सर्वत्र प्रकाश करता है हमारे पुत्रादि में कल्याण हो चौपायों में कल्याण हो ॥ ४ ॥

शन्नो मित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्यमा । शन्नो इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः ॥ ५ ॥

मित्र देवता हमारे निमित्त सुखस्वरूप हो, वरुण सुखरूप हो, अर्यमा हमारे निमित्त सुख करें । देवेश हमको कल्याण करें, बृहस्पति और उरुक्रम व्यापक विष्णु भगवान् हमारे लिये कल्यण कारी हों ॥ ५ ॥

शन्नो वातः पवताꣳ शन्नस्तपन्तु सूर्यः । शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ ६ ॥

उसकी कृपा से वायु हमारे लिये सुख स्वरूप वहन करे, सूर्य हमारे लिये कल्याण के निमित्त ताप दान करे, शब्दयमान् पर्जन्य मनुष्यों को जल से पुष्ट करने वाला देव हमारे लिये सुख स्वरूप होकर वर्षा करे ॥ ६ ॥

अहानिशम्भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रतीधीयताम् । शन्न इन्द्राग्नी भवता मवोभिः शन्नः इन्द्रा वरुणा रात हव्या। शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः ॥ ७ ॥

उसी परमात्मा की कृपा से सम्पूर्ण दिन हमारे निमित्त कल्याण स्वरूप हों, सम्पूर्ण रात्री कल्याण विधान करें, इन्द्र और अग्नि अपनी पालनाओं से हमको सुख स्वरूप हों, इष्टि मद इन्द्र और वरुण हमको कल्याण विधान करें, अन्न को उत्पन्न करने वाले इन्द्र और पूषा देवता हमको सुख कारी हों तथा सुखकारी इन्द्र सोम देवता हमको कल्याणकारी हों ॥ ७ ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ ८ ॥

हम प्रभात समय में अग्नि को आह्वान करते हैं। प्रभात में इन्द्र को, प्रभात में मित्रावरुण देवता को, प्रभात में अश्विनी कुमारों को, प्रभात में भग देवता को, पूषा देवता को, वेद पालक ईश्वर को, सोम और सदाशिव रुद्रदेव को आह्वान करते हैं ॥ ८ ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता। आध्रश्चिद्यमन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ ९ ॥

हम उस प्रसिद्ध प्रभात में जयशील प्रचण्ड अखण्ड काल रूप अदिति के पुत्र सूर्य को आह्वान करते हैं जो जगत् का धारण करने वाला है जिसको दरिद्र भी, स्वार्थ सिद्धि के निमित्त इच्छा करता है रोगी भी तथा राजा भी जिस आदित्य को उदय करो इस प्रकार कहते हैं और यमराज भी जिसके उदय की इच्छा करते हैं ॥ ९ ॥

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ १० ॥

सबका प्रेरक सविता देवता सुवर्णमय रथ में आरूढ होकर रात्रि लक्षण वाले अन्तरिक्ष पथ में पुनरावर्तन क्रम से भ्रमण करते देवादि को और मनुष्यादि को अपने २ व्यापार में

स्थापन करते सम्पूर्ण भुवनों को देखते हुए आगमन करते हैं ॥ १० ॥

येते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो रेणवः सुकृता अन्तरिक्षे । तेभिर्नो अद्यपथिभिः सुगेभीरक्षाच नो अधिच ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

हे सविता ! हे देव । अन्तरिक्ष में जो पूर्व काल में हुए रजरहित मार्ग हैं वे परमात्मा द्वारा सुकृत किये हैं उन सुन्दर गमन योग्य अन्नपान सम्पन्न मार्गों से हमको अब प्राप्त करो और जाते हुए हमारी रक्षा करो और अङ्गीकार करके यह मेरे हैं वा महायाज्ञिक दाता हैं ऐसा कहो ॥ ११ ॥

भक्तों के चरित्र ।

सन्त कबीर ।

मध्य कालीन सन्त महात्माओं में कबीर जी का आसन बहुत ऊंचा है । जिस समय देश में अनाचार और अत्याचार फैल रहा था, मुसल्यानी धर्म की प्राबल्यता थी, उस समय कबीरजी ने निर्भीकता से धर्मका प्रचार किया और लोगों में भक्ति भाव जाग्रत कर दिया । कबीर जी की वाणी निराले ही ढंग की है । जितना प्रभाव इनकी वाणीका मनुष्यके अंतः-करण पर होता है उतना शायद ही किसी अन्य महात्मा की वाणी का होता हो । भक्ति, ज्ञान, योग और वैराग सब ही विषयों पर कबीर जी ने इतना उत्तम और स्पष्ट कथन किया है कि प्रत्येक प्रकार का जिज्ञासु इस से लाभ उठा सकता है । भक्ति का तो कबीर जी अवतार ही माने जाते हैं । कबीर जी के भजनों और वाणियों की संख्या करना कठिन है । इन के नाम से अनेक ग्रन्थ विख्यात हैं । इन के जीवन की संक्षिप्त घटनायें भक्ति के पाठकों की भेंट की जाती हैं ।

कबीर जी के जन्म के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की कहानियाँ प्रचलित हैं परन्तु विशेषतः यह कहा जाता है कि एक विधवा ब्राह्मण की लड़की स्वामी रामानन्द जी के दर्शन करने गई थी । रामानन्द जी ने उस को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया । इस पर उस लड़की ने उत्तर में निवेदन किया कि महाराज मैं विधवा हूं मेरे लिये इस प्रकार का आशीर्वाद किस मतलब का ? रामानन्द जी ने

कहा अब तो भगवान् की मरजी हो चुकी । तेरे बड़ा भक्त पुत्र जन्म लेगा। परमात्मा की लीला से उस लड़की को गर्भ रह गया और एक लड़का उत्पन्न हुआ। वह बिरादरी के भय से लड़के को जङ्गल में डाल आई। एक मुसल्मान जुलाहा उधर जा निकला, उस के पुत्र न था वह बालक को अपने घर ले आया। कबीर उस का नाम रखा और पालन पोषण किया। बचपन ही से कबीर जी को भगवान के भजन का बड़ा प्रेम था। वह मुसल्मानी ढङ्ग की कोई भी बात न करते थे बल्कि राम नाम का उच्चारण बड़े प्रेम से करते थे। उन के माता पिता ने मना किया परन्तु सच्ची लगन वाले को कौन रोक सकता है? सबका प्रयत्न विफल हुआ, वह इसी तरह अपनी धुन में लगे रहे। किसी ने कहा कि गुरु के बिना मनुष्य को भगवान् की प्राप्ति होना कठिन है। कबीर जी ने पूछा कि किस को गुरु बनाया जावे। उस ने उत्तर दिया कि गुरु बनाने के योग्य आज कल रामानन्द जी हैं। कबीर जी ने मन में विचार किया कि रामानन्द जी तो मुसल्मान की परछाई भी नहीं पड़ने देते वह भला मुझ को किस तरह उपदेश देंगे? परन्तु कहावत है "जिन ढूंढा तिन पाइयाँ" अन्त को कबीर जी ने विधी निकाल ली। रामानन्द जी बहुत सवेरे स्नान करने जाया करते थे। कबीर जी रास्ते में लेट गये। रामानन्द जी का उन पर पांव पड़ा। पैर के पड़ते ही रामानन्द जी ने राम का शब्द उच्चारण किया। कबीर जी इस को महा मन्त्र समझ भजन करने लगे। घर आकर रामानन्दी तिलक धारण कर माला ग्रहन कर ली। कबीर की माता उन के इस आचरण से बहुत कष्ट हुई परन्तु कबीर जी ने कुछ न सुना और प्रेम से भगवान का भजन करते रहे। कबीरजी से जब कोई पूछता कि तेरा गुरु कौन है तो उत्तर में कहा करते कि मेरे गुरु रामानन्द जी हैं। धीरे २ यह बात रामानन्द जी तक पहुंची, किसी ने कहा महाराज जुलाहे का लड़का कबीर अपने को आप का शिष्य बतलाता है। रामानन्द जी ने विस्मय से उत्तर दिया कि हम ने उसको शिष्य नहीं किया वह मिथ्या भाषण करता है, उस को हमारे पास लाना चाहिये। कबीर जी, रामानन्द जी के पास गए, रामानन्द जी ने परदे की ओट से बातें की। कबीर जी ने सब वृत्तान्त उपदेश का वर्णन किया और यह भी निवेदन किया कि महाराज सब शास्त्रों का मत है कि राम नाम महामन्त्र है, राम नाम ब्रह्म स्वरूप है। स्वयं शिव ने पार्वती के प्रति राम नाम की महिमा वर्णन की है तिस पर भी जिस राम नाम का उपदेश आप के श्रीमुख से हुआ है, उस से बढ़ कर मेरे लिये और कौनसा मन्त्र होगा? और जब आप ने मन्त्र का उपदेश किया है फिर आपके गुरु और मेरे शिष्य बनने में क्या सन्देह है? इस बात को सुन कर रामानन्द जी बहुत प्रसन्न हुए कबीर जी को सच्चा जिज्ञासु जान परदा उठा

दिया और उन को अपनी छाती से लगा लिया और भगवद्भजन या साधु सेवा का उपदेश कर विदा किया। कबीर जी अपने निर्वाह के लिए कपड़ा बुनने का काम करते और रात दिन भगवद्भजन में लवलीन रहते।

एक दिन कपड़ा लेकर बाजार में बेचने गए। कपड़ा किसी साधु ने पसन्द कर लिया कपड़ा उसको दे दिया और आप घर वालों के भय से कहीं जा छुपे। भगवान उनके दुःख को न सह सके। तीन दिन बीतने पर बनजारे का रूप धारण कर बैलों पर अन्नादि सब सामग्री लाद कर कबीर जी के घर डाल गए। लोग कबीर जी को ढूंढ कर घर लाए। कबीर जी भगवत् चरित्र समझ कर बड़े प्रसन्न हुए और साधुओं को बुला कर सब अन्न बांट दिया। ब्राह्मणों को इस दान का कुछ भाग न मिला। इस पर ब्राह्मण बहुत नाराज हुए। वह सब जमा होकर कबीर जी के पास गए और उनको धमका कर कहने लगे कि तुझ को धन का बड़ा घमण्ड हो गया है जो तूने बैरागियों को जो शून्य हैं अन्न बांट दिया और हमको पूछा तक नहीं, जा इस नगर से निकल जा। कबीर जी ने उत्तर दिया कि किसी के घर चोरी थोड़ी ही की है जो हम नगर छोड़ जावें? परन्तु ब्राह्मणों ने लाचार किया कि या तो हमारी कुछ भेट दे नहीं तो काशीपुरी से बाहर निकल जा। लाचार कबीर जी किसी जगह जाकर छुप गये। भगवत को अपने भक्त की महिमा प्रकट करनी थी, इस लिए कबीर जी का रूप बना कर घर आए और ब्राह्मणों को रुपया व अनाज इतना बांटा कि समस्त काशी में कबीर जी का यश फैल गया। फिर ब्राह्मण का रूप धारण कर भगवान कबीर जी के पास पहुंचे और कहा कि जङ्गल में क्यों फिरता है, कबीरजी के घर जा वहां सब को अन्न मिलता है। कबीर जी घर आए और भगवत् चरित्र जान कर परमानन्दित हुए। इस को सिद्धि समझ लोग दूर २ से आने लगे, कबीर जी के भजन में हानि होने लगी नितान्त उन्होंने एक बोतल में गङ्गा जल भरा और एक वेश्या के गले में हाथ डाल कर उत्तम की भान्ति काशी में विचरने लगे। भक्त लोगों ने इस आचारण से भय माना और बुद्धिमानों ने निन्दा की परन्तु लोगों की भीड़ कम नहीं हुई। एक दिन वेश्या और बोतल को लिए राज दरबार में चले गए परन्तु राजा ने और अहलकारों ने आदर सत्कार नहीं किया। कबीर जी वहाँ बैठ गए और बोतल में से गंगाजल छिड़क कर राम नाम का मंत्र पढा। यह देखकर राजाने पूछा इसका क्या कारण है? कबीर जी ने उत्तर दिया कि श्री जगन्नाथ की रसोई में आग लगजाने से रसोइया जलने लगा था मैंने यह जल छिड़कर उसकी आग को शान्त किया है। यह सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ और उसने उसी समय हरकारे को भेजकर ख़बर मंगाई। बात सत्य निकली। राजा बड़ा लज्जित हुआ और राजा व रानी दोनों ने अपने अपराध की क्षमा मांगी।

कबीर जी ने राजा को भक्ति का उपदेश दिया।

उस समय भारत पर सिकन्दर लोधी राज्य करता था। सिकन्दर काशी में गया वहां ब्राह्मणों और मुसलमानों ने उसके कान भरे। उसने कबीर जी को पकड़वा बुलाया। लोगों ने कबीर जी से कहा कि बादशाह को सलाम करना चाहिए। कबीर जी ने कहा कि न तो हमको सलाम करना आता है और न हमको बादशाह से कुछ काम है, मैं तो एक राम नाम को जानता हूं मेरा तो वही जीवन प्राण और आधार है। बादशाह ने सुनकर क्रोध किया और जंजीर से बन्धवाकर गंगाजी में डलवा दिया जल में न डूबे तब अग्नि में डलवाया, न जले तब मस्त हाथी छोड़ा परन्तु हाथी ने भी कुछ न किया तो लाचार बादशाह चरणों में पड़ा और अपराध क्षमा कराके बोला कि इस दास को आज्ञा करो धन जागीर जो इच्छा हो भेंट की जावे परन्तु कबीर जी ने उत्तर दिया कि हमको राम नाम छोड़ कर और किसी चीज की आकांक्षा नहीं है। काशी के ब्राह्मणों को जब यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो द्वेष की अग्नि और भी भड़क उठी। उन्होंने बहुत आदमियों को साधुवेष बनाकर सारे देश में कबीर जी की तरफ से नेवता फेर दिया कि कबीर जी के हाँ अमुक तिथी को भण्डारा है। बहुत साधु जमा होगए। यह देख कबीर जी छुप रहे। भगवत् ने कबीर जी का रूप धारण कर सब को भोजन कराया और बड़ी धूम धाम से भण्डारे का काम पूर्ण किया। कहते हैं कि स्वर्ग से एक अप्सरा भी मोहनी रूप बनाकर कबीर जी की परीक्षा के लिए आई थी परन्तु कबीर जी भगवद् रूप में छके रहते थे उन्होंने उसकी तरफ दृष्टि भी न की। भक्तमाल वाले यह भी लिखते हैं कि जब ब्राह्मण सब तरह हार गए तब गोरखनाथजी को बुला कर लाए। गोरखनाथजी का और कबीर जी का सम्वाद हुआ। अन्त में गोरखनाथ जी कबीर जी को सन्त समझ उनकी प्रशंसा करके चलेगए। इस तरह कबीर जी की महिमा और भक्ति के बारे में अनेक कहानियां प्रचलित हैं यह विश्वास की बातें हैं भक्तों के चरित्र के सम्बन्ध में कोई घटना भी आश्चर्य जनक नहीं है। भक्तों के लिए भगवान स्वयं कहते हैं—

जहां भक्त मेरो पग धरें, वहां धरूं मैं हाथ।
लारे लागो ही फिरूं, कभी न छोड़ूं साथ॥

भगवान् भक्ति के वश हैं और अपने भक्त की रक्षा के लिए सब कुछ करते हैं। लोग कहते हैं कि भगवान् अपने नियम के अनुसार काम करते हैं, हमारा कहना है कि यदि यह भी मान लिया जावे तो कोई हानि नहीं, फिर यह भी तो एक नियम है कि वह शरणागत की प्रतिपालना करते हैं और नियम में भी यह अपवाद है कि प्रेम में नियम नहीं होता। कहते हैं कि कबीर की एक स्त्री थी जिसका नाम लोई था और एक कमाल व कमाली नाम के पुत्र व पुत्री थी परन्तु कबीर

जी की जीवन घटनाओं को विचारने से मालूम होता है कि कबीर जी आजन्म ब्रह्मचारी रहे। वह भक्ति के प्रचार के लिए लोगों में मिले झुले रहते थे। लोई भक्तनी थी वह उन के सत्संग में रहती थी और कमाल व कमाली उनके शिष्य थे।

बहुत काल तक लोगों में भक्ति का प्रचार कर और लाखों जीवों को भगवान् के मार्ग में लगाकर कबीर जी अपने नश्वर शरीर को छोड़ भगवन् में लय होगए। कहते हैं शरीर छोड़ते समय भगवन् ने उनको चतुर्भुजी रूप से दर्शन दिए। कबीर जी ने शरीर छोड़ते लोगों के भ्रम को मिटाने और भगवत् की महिमा को बढाने के लिए गंगा के पार जाकर मगहर देशमें शरीर छोड़ा। लोगों को विश्वास था कि इस जगह शरीर छोड़ने वाला गधा बनता है। कबीर जी के शरीर त्याग करने पर मुसलमानों ने चाहा कि हम इनको जमीन में गाडेंगे और हिन्दुओं ने चाहा कि हम इनका अग्नि संस्कार करेंगे परन्तु कहते हैं कि चादर उठा कर देखने पर लाश के स्थान पर फूल मिले॥ राम नाम की महिमा के बारे में कबीर जी कहते हैं–

कबीर सोई मुख धन्य है, जेहि मुख निकसे राम
देही किसको बापुरी, पवित्र होय है ग्राम ॥

प्रह्लाद और वृद्ध मुनि का सम्वाद।

(ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी।)

एक बार महाराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामहजी से पूछा कि हे सदाचार को जानने वाले पितामह! कृपा करके बतलाइये कि किस प्रकार से मनुष्य इस संसार में शोकातीत होकर उत्तम गति को पा सकता है? यह सुन कर भीष्म जी ने उनको प्रह्लाद और वृद्ध मुनि का एक पुरातन इतिहास सुनाया कि एक बार प्रह्लाद ने एक विकारों से शून्य बुद्धिमान् ब्राह्मण से पूछा कि तुम जितेन्द्रिय, दम्भ रहित तथा पूर्वापर का विचार करने में प्रवीण हो। तत्व ज्ञानी हो कर भी बालकवत् फिरते हो। तुम नित्य तृप्त से मालूम होते हो, किसी का अपमान नहीं करते। यह सब प्रजा के लोग काम क्रोधादि के प्रवाह में बहते चले जारहे हैं परन्तु तुम काम क्रोधादि की ओर से उदास हो। तुम न अर्थ का अनुष्ठान करते हो और न काम के व्यापार में लगते हो। हे मुने! ऐसा तुम्हारा शास्त्र ज्ञान कैसा है, तुम अपने जीवन को किस प्रकार व्यतीत करते हो। प्रह्लाद के ऐसे वचन सुन कर बुद्धिमान् मुनि ने अर्थ भरी वाणी में इस प्रकार कहा:–

पश्य प्रह्लाद भूतानामुत्पत्तिमनिमित्ततः।
ह्रासं वृद्धिं विनाशं च न प्रहृष्ये न च व्यथे ॥

स्वभावादेव सदृश्या वर्त्तमानाः प्रवृत्तयः।
स्वभावनिरताः सर्वाः परितुष्ये न केनचित् ॥
पश्य प्रह्लाद संयोगान्विप्रयोग परायणान।
सञ्चयांश्च विनाशान्तान्नक्वचिद्विदधे मनः ॥

हे प्रह्लाद! देखो इस जगत् की उत्पत्ति, ह्रास, वृद्धि और विनाश कारण रहित ब्रह्म से होते हैं। ऐसा जान कर मुझे न तो हर्ष होता है और न दुःख होता है। इस जगत् में जो कुछ भी उत्पन्न हुवा है, जो कुछ भी प्रवृत्तियें हैं वे सत्य स्वरूप ब्रह्म में से ही उत्पन्न होती हैं तथा वे सब अन्त में परमात्मा में ही लय हो जाती हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु अपने २ स्वभाव के आधीन है। कोई भी अपने कर्म से मुझे सुख वा दुःख नहीं देसकती यदि मेरे पुत्र हो जाय तो उससे हर्ष नहीं होता और मरजाय तो उससे दुःख नहीं होता क्योंकि जन्मना और मरना तो मनुष्य का स्वभाव ही है उस स्वभाव में उलट फेर करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। हे प्रह्लाद! देखो जितने संयोग हैं सब के साथ वियोग लगा हुवा है। धनादि जो संचय किया जाता है उसका भी अन्त में नाश ही होता है ऐसा विचार कर मैं किसी भी पदार्थ पर मन को आसक्त नहीं करता हूं। जो मनुष्य सब प्राणियों को सत्व, रज आदि गुणों के पुतले मानता है, नाशवान् देखता है तथा जगत् की उत्पत्ति और नाश को जानता है उसको फिर कोई कार्य करने को शेष नहीं रहता। महा-सागर में उत्पन्न हुए बड़ी २ काया वाले जल जन्तुओं का भी नाश होता है। स्थावर और जङ्गम प्राणियों का तथा पृथिवी पर उत्पन्न हुए पदार्थ मात्र का नाश देखने में आता है। इस प्रकार सब प्राणियों को मृत्यु के वश में होते हुए देख कर सर्व साधारण की गिनती में आया हुवा मैं परब्रह्म के स्वरूप को यथार्थ रीति से जान कर सुख से सोता हूं। किसी समय लोग मुझे बड़े ही स्वाद वाले उत्तम भोजन जिमा देते हैं और किसी समय भोजन मिलता ही नहीं। कभी धान्य का एक कण खाकर ही दिन व्यतीत कर देता हूं। कभी पलंग पर सोता हूं तो कभी भूमि पर ही सो रहता हूं। कभी मेरी शय्या महल में बिछी है तो कभी श्मशान में भी सुख से सोता हूं। कभी बहुमूल्य वस्त्र धारण करता हूं तो कभी मृगचर्म से ही निर्वाह करता हूं। धर्म के अनुकूल भोग पदार्थ दैव गति से कभी अपने आप मेरे पास आजाता है तो मैं उसका तिरस्कार नहीं करता तथा दुर्लभ उपभोग को पाने की इच्छा भी नहीं करता हूं। दृढ़, मृत्यु का नाश करने वाले, कल्याण कारी, शोक नाशक पवित्र व्रत का आचरण करता हूं। मेरी बुद्धि अचल है, मैं अपने धर्म से भ्रष्ट नहीं हुवा हूं, मेरा बर्ताव मर्यादा में है मुझे उत्तम अधम का ज्ञान है, मैंने भय, राग, द्वेष, लोभ तथा मोह को त्याग दिया है। मुझे यह पदार्थ चाहिये ऐसी तृष्णा से धन पाने के लिये उद्योग करने पर भी उस के न मिलने पर दुःखी होते हुए मनुष्यों से शिक्षा ग्रहण करता हूं। धन के लिये कृपण मनुष्यों को नीच पुरुषों की सेवा करते देखकर

मैंने मन को जीतते हुए शान्ति धारण करली है। जी में आता है जहां सो रहता हूं, इन्द्रियों को नियम में रखता हूं, सत्य बोलता हूं, बाहरी और भीतरी शौच का पालन करता हूं। हृदय मन, और वाणी मुझे खैंच कर अपने विषयों की ओर को लेजाने में लगे हुए हैं। परन्तु मैं उनकी उपेक्षा करता हूं। मैं इन सब व्रतों को अज्ञान का नाश करने वाला, चिरञ्जीपना देने वाला और अनन्त दोषों से छुटाने वाला मानता हूं।

यह दृष्टान्त सुना कर भीष्म पीतामह ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! जो पुरुष राग, भय, लोभ और क्रोध को त्याग कर जगत् में उपरोक्त नियमों का पालन करते हैं वे ही पुरुष अपने दिन सुख से व्यतीत करते हैं।

याज्ञवल्क्य का जनक को उपदेश।

५

गताङ्क का शेष।

निश्चय करके यह महानआत्मा सब का संहार करने वाला तथा सबका फल देने वाला है जो इस प्रकार जानता है वह सब प्रकार की कामनाओं को प्राप्त होता है 'स वा एष महान-आत्मा अजरः अमरः अमृतः अभयः वै अभयं ब्रह्म यः एवं वेद अभयं ह वै ब्रह्म भवति' निश्चय करके यह महानआत्मा जरा रहित अविनाशी मृत्यु रहित तथा अभय रूप है निश्चय करके ब्रह्म अभय स्वरूप है जो इस प्रकार जानता है वह निश्चय करके अभय ब्रह्म हो जाता है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति॥

ऋग्वेदादि वाणी मन के सहित जिस को प्राप्त न होकर लौट आते हैं और उसको प्रत्यक्ष निरूपण नहीं करसकते हैं, उस ब्रह्मके आनन्द का जानने वाला जन्म मरण भयादि से कभी नहीं डरता। 'एतं ह वाव न तपति किमहं साधुना करवम् किमहं पापमकरवमिति स यः एवं विद्वानेते आत्मानं स्पृणुते उभे ह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते य एवं वेद इत्युपनिषद्' यह बार्ता सत्य है कि शोक है मैंने सत् कर्म कभी नहीं किया और हा शोक है कि मैंने पाप कर्मोंको किया इस प्रकार ऐसे पश्चात्ताप को जो जानने वाला है वह पाप पुण्य दोनों को परमात्मा रूप देखता है क्योंकि वह विद्वान् इन दोनों

को अर्थात् पुण्य पाप कर्मों को आत्मरूप ही देखता है जो इस प्रकार अखण्ड अद्वैत ब्रह्म को जानता है वह स्वयं पाप, पुण्य, जरा, मृत्यु रहित अखण्डानन्द पूर्ण ब्रह्म हो जाता है।

अहं वृक्षस्य रेरीवी कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव ।
ऊर्ध्वं पवित्रो वाजिनी इव स्वमृतमस्मि ॥

मैं संसार रूपी वृक्ष का प्रेरक और अन्तर्यामी हूं। मेरा यश पर्वत के शिखर समान ऊंचा है और जैसे सूर्य विषय शुद्धअमृत है तैसे ही मैं निर्मल ब्रह्म ज्ञान स्वरूप हूं। और प्रकाशमान् ब्रह्मरूपी द्रव्य मुझ करके पाया गया है। मैं कार्य कारणात्मक जगत् का आदि मध्यान्त जानने वाला हूं। इसी कारण मैं अमृत से सिञ्चित किया हुआ हूं इस प्रकार त्रिशंकु मुनि का आत्मानुभव के पश्चात यह वाक्य है। "तदुक्तं ऋषिणानुसन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वाशतं मा पुर आयसि ररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति गर्भ एवै तच्छयानो वामदेव एवमुवाच" गर्भ में ही स्थित वामदेव इस प्रकार बोले कि निश्चय करके मैं इन अग्न्यादि देवों के सम्पूर्ण जन्मों को जानता हूं। मुझ को सैंकड़ों लोह निर्मित शृंखला के समान बने हुए शरीर परमात्मज्ञान से प्रथम रक्षा करते थे, परन्तु अब मैं बाज़ के समान जाल को भेदन करके परमात्मज्ञान रूप सामर्थ्य से इस गर्भमें ही सोया हुआ निकल आया हूं।

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यतामा ॥
अहं भूमिमददामार्याया हं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनुकेतमायन्

मैं ही मनु हुआ, मैं ही सूर्य हुआ, मैं ही कक्षीवान् ऋषि, मैं ही विप्र, कवि, भूमि के धारण करने वाला हुआ। तात्पर्य यह है कि सब मैं ही हूं। पुनः वृहदारण्यक में लिखा है

"यदाहुर्ब्रह्म विद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्याः मन्यन्ते तदु ब्रह्म किमवेद्यस्मात्तत्सर्वमभवदिति। ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानमेवावेत् अहं ब्रह्मास्मीति। तस्मात् तत्सर्वमभवत्। तद्यो यो देवानां प्रति बुद्ध्यत स एव तदभवत् तथा ऋषिणां तथा मनुष्याणां" मनुष्य जिस ब्रह्म विद्या द्वारा सब कुछ हो जाता है वह कथन करते हैं और किस प्रकार संकल्प करके सर्व रूप हो जाता है वह कथन करते हैं। मैं ब्रह्म हूं इसी कारण से वह सब कुछ होगया। वह जो जो देवताओं में से जागा, अविद्या दूर हुई और उस ने जाना कि मैं ब्रह्म हूं वह ब्रह्म हो गया। इसी प्रकार ऋषियों में से जिस ने यह जाना कि मैं ब्रह्म हूं वह ब्रह्म हो गया। यह प्रसिद्ध है कि वामदेव ऋषि ने जब देखा और कहा कि मैं ही मनु और मैं ही सूर्य हुआ अब भी जो इस प्रकार समझता है कि मैं ब्रह्म हूं वह वही हो जाता है। ऐसे पुरुष का ऐश्वर्य दूर करनेमें देवता भी समर्थ नहीं होते। क्योंकि वह इन देवताओं का आत्मा ही हो जाता है।

"अथ योऽन्यान् देवतामुपासतेऽन्योऽसावन्योऽहम-स्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्" और जो अन्य देवताओं की उपासना करता है कि देवता और हैं और मैं और हूं और यह नहीं जानता कि सब देवता मैं ही हूं वह देवताओं का पशु है। जैसे बहुत पशु दोहन वाहनादि से एक मनुष्य का पालन करते हैं इसी प्रकार बहु पशु स्थानीय एक एक अज्ञानी पुरुष विषय भोग द्वारा इन्द्रियों का पोषण करते हैं यदि किसी का एक पशु ले लिया जाय तो उस को अप्रिय होता है तब क्या बहुत पशु लेने पर उस को अप्रिय नहीं होता वरञ्च अधिक होता है। इस लिये अज्ञानी पुरुष के इन्द्रिय और मनको यह प्रिय नहीं लगता कि मैं, ब्रह्म और सम्पूर्ण देवता एक ही हैं। परन्तु विवेकी पुरुष को अद्वैतात्मा सब से प्रिय है। "तदेतत्प्रिय पुत्रा-त्प्रियो वित्तात्प्रियोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यद-यमात्मा" वह यह आत्मा पुत्र, धन तथा अन्य सब पदार्थों से प्रियतम है। अतः जो इस आत्मा से अन्य पुत्रादिकों को प्रिय मानता है उस के प्रति ब्रह्मज्ञानी का यह कथन कि उस को यह कहे "प्रियत्प्रियं रोत्स्यतीति ईश्वरो ह तथैव स्यादात्मानमेव प्रिय मुपासीत्" यदि आत्मा से भिन्न और पदार्थों को ही प्रिय समझता है तो निश्चय अज्ञानी है। वह अपने प्यारे सुखको रोवेगा। यह ईश्वर है इस प्रकार पुत्रादिकों में प्रियता का अभिमान छोड़ कर परमानन्द स्वरूप आत्मा की उपासना करे। जो आत्मा को प्रिय जानता हुआ उपासना करता है उस के लिये कोई अनात्म पदार्थ दुःख दाई नहीं होता।

नाहमात्मार्थ मिच्छामि गन्धान् घ्राणगतानपि।
तस्मान्मे निर्जिता भूमिर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥

अब मैं आत्माके लिये अर्थात् अपने लिये घ्राणगत गन्धों की वाञ्छा नहीं करता इसी कारण से सम्पूर्ण गन्ध और भूमि मेरे वश में रहती है।

नाहमात्मार्थमिच्छामि रसानास्येपि वर्तत।
आपो मे निर्जिता तस्मात् वशे तिष्ठन्ति नित्यदा॥

मैं अपने लिये रसनागत रसों को नहीं चाहता इसी कारण सब जल मेरे वश में रहते हैं।

नाहमात्मार्थमिच्छामि रूपं ज्योतिश्च चक्षुषा।
तस्मान्मे निर्जितं ज्योतिर्वशे तिष्ठन्ति नित्यदा॥

मैं आत्माके लिये चक्षुगत रूप और ज्योति को नहीं चाहता इसी से अग्नि और सम्पूर्ण रूप मेरे वश में हो गये हैं।

नाहमात्मार्थमिच्छामि स्पर्शान् त्वचि गतान्चये।
तस्मान्मे निर्जितो वायुर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥

जब मैंने अपने लिये त्वचागत स्पर्शों को छोड़ दिया इसी कारण सम्पूर्ण वायु और वायु के झोके मेरे वश में होगये।

नाहमात्मार्थमिच्छामि शब्दान श्रोत्र गतानपि।
तस्मान्मे निर्जिता शब्दा वशे तिष्ठन्ति नित्यदा॥

नाहमात्मार्थमिच्छामि मनो नित्यं मनान्तरे।
मनो मे निर्जितं तस्माद्वशे तिष्ठति नित्यदा॥

अपने लिये मैं शब्दों की इच्छा नहीं करता इसी कारण से सम्पूर्ण शब्द मेरे वश में रहते हैं इस लिये मैं अपने आप को मन और संकल्प के लिये नहीं चाहता इसी से मन और संकल्प मेरे वश में होगये हैं। ऋग्वेद में भी एक श्री वाक्य इस प्रकार उद्धृत है:—

अहंरुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि अहमादित्यैरुत विश्व देवैः। अहंमित्रा वरुणो भा बिभर्मि अहमिन्द्राग्नि महमश्विनो भा॥

मैं इन्द्रों के साथ, वसुओं के साथ विचरती हूं आदित्य और सम्पूर्ण देवों के साथ विचरती हूं। मित्र और वरुण को मैं ही धारण किये हुए हूं। मैं ही इन्द्र, अग्नि और अश्विनियों को प्रकाशती हूं इत्यादि और भी बहुत कुछ है। अथर्व वेद में भी कहा है।

अहंरुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाऊ।
अहं जनाय शमदमकृणोम्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश॥

मैं दुष्टों को दण्ड देती हूं, मैं ही मनुष्यों केलिये संग्राम भूमि रचती हूं, मैं ही द्यौ और पृथिवी में प्रविष्ट हूं।

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणान्तर्हितं हवि॥

ब्रह्म ही हवन करने वाला, वह ही यज्ञ, वह ही उद्गाता तथा अध्वर्यु है। अध्वर्यु ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है और ब्रह्म में ही हवि पड़ता है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना॥

ब्रह्म ही अर्पण, ब्रह्म ही हवि, ब्रह्म ही अग्नि, ब्रह्म से ही हवन किया जाता है और वही हवन का फल है। ब्रह्म में ही अभेद दृष्टि से समाहित मन वाले पुरुषों का सम्पूर्ण कर्म होता है।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्च द्ब्रह्म दक्षिणत-श्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्व प्रसृतं ब्रह्मै वदं विश्व मिदं वरिष्ठम्॥

यह अमृत रुप ब्रह्मही है। आदि में ब्रह्म और अन्त में ब्रह्म अर्थात् आगे भी ब्रह्म और पीछे भी ब्रह्म, दायें भी ब्रह्म और बायें भी ब्रह्म, नीचे और ऊपर भी यह ब्रह्म ही फैला हुवा है। यह सम्पूर्ण अतिश्रेष्ठ ब्रह्म ही है जो ज्ञात ज्ञान और ज्ञेय त्रिपुटी है।

यः एषोन्तरादित्ये हिरण्मय पुरुषो दृश्यते हिरण्य समश्रु। हिरण्य केशः आप-न्नखात सर्वे एव सुवर्णम्॥

जो यह आदित्य के मध्य में ज्योतिर्मय पुरुष दीखता है जिसके ज्योतिर्मय बाल, दाढ़ी मूंछ, नख, शिख हैं अर्थात् सब शोभन वर्ण वाले हैं। जैसे लाल कमल होता है इसी प्रकार उस हिरण्मय पुरुष के नेत्र हैं। उस का "उत्" यह नाम है। यह सब पापों से पृथक

हो कर हृदय होता है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ओं खं ब्रह्म॥

ज्योतिर्मय मण्डल से सत्य का मुख ढ़का हुवा है और जो आदित्य में पुरुष है वह मैं हूं। ओं रक्षा करने वाला सर्व व्यापक सब से बड़ा है।

शाण्डिल्य ऋषि का अनुभव इस प्रकार है:—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीत् अथ खलु क्रतुमय पुरुषो यथा क्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथेतःप्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत।

निश्चय करके यह सब ब्रह्म है उस से उत्पत्ति, स्थिति तथा उसी में लय होते हैं। उसको शान्त हो कर उपासना करे। निश्चय करके यह पुरुष संकल्पों का बना हुवा है। जैसे कर्म इस लोक में करता है यह वैसा ही होता है। इसी प्रकार मर करके कर्म करता है और इसी प्रकार भोगता है। यह आत्मा मनो, मय, ज्ञान स्वरूप, ब्रह्माण्ड रूप शरीर वाला, सत्य संकल्प, आकाशवत् परिपूर्ण, सर्व शक्तिमान्, पर्याप्तकाम, सर्वगन्ध, सर्व रस, सब जगत् में व्यापक, अवाकी अर्थात् वाणी से रहित और पक्षपात शून्य है। यह आत्मा मेरे हृदय में अति सूक्ष्म है। धानों और यवों तथा सरसों और चावलादि से भी सूक्ष्म है। और यह मेरा आत्मा हृदय के मध्य पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ और सब लोकों से बड़ा है। "एष मे आत्माऽन्तर्हृदय एतद् ब्रह्म, एतमितः प्रेत्याभि सम्भवितास्मीति। यह आत्मा परमात्मा मेरे हृदय के बीच है। यही ब्रह्म है। इस को यहां से मर कर प्राप्त होऊं। ऐसा जिसका विश्वास हो और कोई सन्देह न हो वह इस को अवश्य प्राप्त होता है। यह शाण्डिल्य ऋषि का अनुभव है।

इति शम्।

अथर्वशिरोपनिषद्।

एक समय देव घूमते २ रुद्र लोक में गये और वहां जाकर रुद्र से पूछने लगे "आप कौन हैं"? रुद्र भगवान् ने कहा "मैं एक हूं" मैं भूत, भविष्य और वर्तमान काल में हूं, ऐसा कोई नहीं है जो मुझसे रहित हो। जो अत्यन्त गुप्त है, जो सर्व दिशाओं में रहता है वह मैं हूं। मैं नित्यानित्यरूप, व्यक्तरूप, अव्यक्तरूप, ब्रह्मरूप, अब्रह्मरूप, पूर्व पश्चिम उत्तर और दक्षिण दिशारूप, ऊर्ध्व और अधो रूप, दिशा, प्रदिशा, पुमान, अपुमान, स्त्री, गायत्री, सवित्री त्रिष्टुप, जगती, अनुष्टुप, छन्द, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सत्य, गौ, गौरी, ऋग्, यजु, साम, अथर्व, अंगिरस, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ, ओज, तेज, गुहा, अरण्य, अक्षर, क्षर पुष्कर, पवित्र, उग्र, मध्य, बाह्य, पुरस्तोत इस प्रकार ज्योति रूप मैं हूं। मुझको सब में रमा हुआ जानो। जो मुझ को जानता है, वह सब

देवों को जानता है और अंगो सहित सब वेदों को भी जानता हूँ । मैं अपने तेज से ब्रह्म को ब्राह्मण से, गौ को गौ से, ब्राह्मण को ब्राह्मण से, हविष्य को हविष्य से, आयुष्य को आयुष्य से, सत्य को सत्य से, और धर्म से धर्म की तृप्ति करता हूँ ।" वे देव शंका के संबन्ध से रुद्र से पूछने लगे, रुद्र को देखने लगे, और उनका ध्यान करने लगे पीछे उन देवों ने ऊँचे हाथ करके इस प्रकार स्तुति की ॥ १ ॥

'हे रुद्र भगवान् ! आप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कंद, इन्द्र, वायु, अग्नि, सूर्य, आठग्रह, प्रतिग्रह, भू, भुवर्लोक, स्वर, महर्लोक, पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्यौ, जल, तेजरूप, काल, यम, मृत्यु, अमृत, आकाश, विश्व, स्थल, सूक्ष्म कृष्णशुक्ल, सत्य, सर्वरूप हो आप को नमस्कार हो॥१॥

पृथ्वी आदिरूप, भुवर्लोक आपका मध्य प्रदेश रूप और स्वर्ग लोक आप का शिररूप है । आप विश्वरूप ब्रह्मैकरूप, दो प्रकार के, तीन प्रकार के वृद्धिरूप, शांति रूप, पुष्टिरूप, हुतरूप, अहुतरूप, दत्तरूप, अदत्तरूप, सर्वरूप असर्वरूप, विश्व, अविश्व, कृत, अकृत, पर, अपर और परायणरूप हो । आप ने हम को अमृत पिला के अमृतरूप किया, हम ज्योतिभाव को प्राप्त हुए और हमको ज्ञानप्राप्त हुआ । क्या अब शत्रु हमारा अरिष्ट कर सकेंगे ? हमारा नाश नहीं होगा, आप मृत्यु को अमृतरूप हो । सोम सूर्य से प्रथम और सूक्ष्म पुरुषरूप हो । आप अपने तेज द्वारा ग्राह्यवस्तु को अग्राह्य वस्तु से, भाव को भाव से सौम्य को सौम्य से, सूक्ष्म को सूक्ष्म से वायु को वायु से ग्रास करते हो । ऐसे उपसंहार वाले और महाग्रास करने वाले आप को नमस्कार है । हृदय में देवताओं का, प्राणों तथा आप का वास है । आप तीन मात्रारूप और पर रूप हो । उत्तर आपका मस्तक है, दक्षिण पाद है, जो उत्तरमें है, सो ही ॐकार है सो ही प्रणव रूप है जो प्रणव है, सो सर्व व्यापीरूप, सो ही अनंतरूप, ताररूप, सूक्ष्मरूप शुक्लरूप, वैद्युत, रूप, परब्रह्मरूप, एकरूप, इन्द्ररूप, ईशानरूप है और जो ईशान है सो ही भगवान् महेश्वररूप है ॥ ३ ॥

आप ॐकार इस कारण हो कि ॐकार का उच्चार करने के समय प्राण खैंचने पड़ते हैं इस लिये ॐकार कहे जाते हो । प्रणव कहने का कारण यह है कि इस प्रणव के उच्चारण करते समय ऋग्, यजु, साम, अथर्व, अंगिरस, और ब्रह्मा ब्राह्मण को नमस्कार करने आते हैं इस लिये प्रणव नाम है सर्व व्यापी कहने का कारण यह है कि इस के उच्चारण करने के समय जैसे तिलों में तेल व्यापक हो कर रहता है, तैसे आप सब लोकों में व्यापक हो रहे हो अर्थात् शांत रूप से आप सबमें ओतप्रोत हो इस लिये आप सर्व व्यापी कहलाते हो । अनंत कहने का कारण यह है कि उच्चारण करते समय, उच्च, नीच और तिर्यक किसी में आपका अन्त देखने में नहीं आता इसलिये आप अनंत कहलाते हो । तारक

कहने का कारण यह है कि उच्चारण के समय पर गर्भ जन्म व्याधि जरा और मरण वाले संसार के महा भय से आप तारने वाले हो इस लिये आप को तारक कहते हैं। शुक्ल कहने का कारण यह है कि उच्चार करने में क्लेद होता है अर्थात् श्रम पहुंचता है। सूक्ष्म कहने का कारण यह है कि उच्चारण करते सूक्ष्म रूप वाले होकर स्थावरादि सब शरीरों को आधीन करते हो। सूक्ष्म वैद्युत कहने का कारण यह है कि उच्चारण के साथ में स्थूल महान् अंधकार में प्रकाश को प्राप्त होते हो इस लिये वैद्युत रूप कहा है। ब्रह्म कहने का कारण यह है कि पर, अपर और परायण का बड़ी वीणा से ज्ञान कराते हो इस लिये आप को परब्रह्म कहते हैं। एक कहने का कारण यह है कि सब प्राणों का भक्षण करके अन्न रूप हो कर उनको किसी पवित्र स्थान में रखते हो। कितने ही पवित्र क्षेत्र में, कितने ही दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व दिशा में जाते हैं परंतु उन सब का मेल आप में है। स्वर्ग रहित सब प्राणी मात्र में आप एक रूप से रहते हो इस लिये आप को एक कहते हैं। ऋषियों को आप का रूप प्राप्त हो सक्ता है, सामान्य भक्तों को आप का रूप प्राप्त नहीं हो सक्ता इस लिये आप को रुद्र कहते हैं। सब देवताओं के परम ईश सब कामना रूप ईशानी नाम की परम शक्ति से आप अधिष्ठाता हो। जैसे दूध देने वाली गौ हो इस प्रकार और अहरण के समान कूटस्थ ऐसे आप की हम स्तुति करते हैं, आप जगत् के ईश रूप, स्वयं प्रकाश और इन्द्र के आस पास रहने वाले यम देवता के अधिष्ठाता हो इस लिये आप को ईशान कहते हैं। आप को भगवान् परमेश्वर कहते हैं इस का कारण यह है कि भक्त जो अज्ञान वाले होते हैं उनके ऊपर आप अनुग्रह करते हो और उनमें वाणी का प्रादुर्भाव करते हो तथा सब भावों को त्याग कर आप आत्म-ज्ञान रूप ऐश्वर्य से अपने प्रकाश में प्रकाशते हो इस लिये आप को भगवान् महेश्वर कहते हैं। यह रुद्र चरित्र है ॥ ४ ॥

एक ही देव सब दिशाओं में रहता है। प्रथम जन्म उसी का है, अंत में गर्भ रूप में वह ही है वह ही उत्पन्न होता है और होगा। प्रत्येक व्याक्ति भाव में वह ही व्याप्त हो रहा है। एक रुद्र ही अपनी महाशक्ति से इस लोक को नियम में रखता है, वह किसी अन्य रूप से नहीं होता। सब उस में रहते हैं और अंत में सबका संकोच उसी में होता है। विश्व का प्रकट करने वाला और रक्षण करने वाला वही है। जो सब योनियों में व्याप रहा है, और जिससे यह सर्व व्याप्त होरहा है, उस पूज्य ईशान और देव रूप पुरुष का चिन्तवन करने से मनुष्य परम शांति को प्राप्त करते हैं। सब हेतु समूह का मूल रूप, क्षमा को धारण करके संचित कर्मों को बुद्धि से मनुष्यों को रुद्र में स्थापित करना चाहिये। रुद्र में एकपना है उस के संबन्ध में वर्णन करते हैं:—आप शाश्वत, पुराण और ईश रूप हो, आप की चौथी मात्रा

से पशुओं को बंधन का नाश रूप शांति प्राप्त होती है, आप की प्रथम ब्रह्मयुक्त मात्रा रक्त वर्ण वाली है, जो उसका नित्य ध्यान करते हैं वे ब्रह्म पद को प्राप्त होते हैं। विष्णु देव युक्त आप की दूसरी मात्रा कृष्ण वर्ण वाली है, जो उस का नित्य ध्यान करते हैं वे वैष्णव पद को प्राप्त होते हैं। आप की रुद्र देव युक्त जो तीसरी मात्रा है वह पीले वर्ण वाली है उस का जो नित्य ध्यान करते हैं वे ईशान यानी रुद्र लोक को प्राप्त होते हैं। अर्ध चौथी मात्रा जो अव्यक्त रुप में रह कर आकाश में विचरती है उस का वर्ण शुद्ध स्फटिक के समान है, जो उस का ध्यान करते हैं उनको मोक्ष पद की प्राप्ति होती है। इस चौथी मात्रा ही की उपासना करनी चाहिये। मुनि वाणी से कहते हैं परन्तु उस के ग्रहण करने के संबन्ध को नहीं कहते। यह ही मोक्ष मार्ग है। जिस करके उत्तर मार्ग से देव लोक में जाते हैं, जिस से पितृ लोक में जाते हैं और जिस उत्तर मार्ग से ऋषि जाते हैं वह ही पर, अपर और परायण रूप है। जो बाल के अग्र भाग समान सूक्ष्म होने से हृदय में रमता है, जो विश्व रूप, देव रूप, सुन्दर और श्रेष्ठ है, जो विवेकी पुरुष हृदय में रहने वाले इस परमात्मा को देखते हैं उनको ही शांति भाव प्राप्त होता है दूसरे को नहीं।

क्रोध, तृष्णा, क्षमा, और हेतु समूह का मूल रूप वासना का त्याग करके संचित कर्मों को बुद्धि से रुद्र में अर्पण कर दे, इसको ही रुद्र में एकता कहते हैं क्योंकि रुद्र शाश्वत और पुराण रूप होने से ईश कहलाता है, तैसे ही तप के उत्कृष्ट साधन से नियन्ता कहलाता है, अग्नि, वायु, जल, स्थल, और आकाश ये सब भस्म रूप हैं। पशुपतिकी भस्म का जिस के अङ्ग में स्पर्श नहीं होता, उसका मन और आंख भस्म रूप होते हैं इस लिये पशुपति की ब्रह्म रूप भस्म पशु के बन्धन को नाश करने वाली है।

जो रुद्र अग्नि में है जो रुद्र भीतर के भाग में है उसी रुद्र ने औषधियों और वनस्पतियों में प्रवेश किया है, जिस रुद्र ने इस सब विश्व को उत्पन्न किया है, उस अग्नि रूप रुद्र को नमस्कार है, जो रुद्र अग्नि में, जल में, अन्तरिक्ष में, औषधियों और वनस्पतियों में रहता है और जिस रुद्र ने विश्व को और भुवनों को उत्पन्न किया है उस रुद्रको नमस्कार है। जो रुद्र जल में, औषधियों में और वनस्पतियों में स्थिति कर रहा है जिस रुद्र ने जगत् को धारण कर रक्खा है, जो रुद्र दो और तीन रीतिसे धारण करता है जिस ने अन्तरिक्ष में नागों को धारण किया है उस रुद्र को नमस्कार है। इस रुद्र भगवान् के मस्तक और हृदय की उपासना करने से उच्च स्थिति प्राप्त होती है। जो इस प्रकार उपासना न की जाय तो नीच गति प्राप्त होती है। रुद्र भगवान् का मस्तक देवों का समूह रूप व्यक्त है, उस का प्राण मन और मस्तकका रक्षण करता है। देव समूह स्वर्ग आकाश अथवा पृथ्वी किसीका

भी रक्षण नहीं कर सकते। इस रुद्र भगवान् में सब ओत प्रोत है। इस से पर कोई अन्य नहीं है, उस से पूर्व कुछ नहीं है तैसे ही उस से पर कुछ नहीं है। उस के हजार मस्तक हैं, एक मस्तक है, और सब जगत् में व्याप्त हो रहा है। वह अक्षर है, उस से काल कहने में आता है, काल रूपहोनेसे उसको व्यापक कहते हैं व्यापक अथवा भोगायमान रुद्र जब शयन करते हैं तब प्रजाका संहार होता है। जब वह श्वास सहित होता है तबतम होता है, तमसे जल होता है जल को अपनी अंगुली से मथन करने से वह जल शिशिर ऋतुके दव[ओस]रूप होता है, उसका मथन करनेसे उसमें फेन होता है फेन से अंडा होता है, अंडेसे ब्रह्मा होता है, ब्रह्मासे वायु होता है, वायुसे ॐकार होता है ॐकार से सावित्री होती है, सावित्रीसे गायत्री होती है और गायत्रीमें से सब लोक होते हैं, फिर लोक तप की उपासना करते हैं, जिस से सत्य होता है और पीछे शाश्वत अमृत बहता है। यह ही परम तप है। वह ही तप, जल, ज्योति, रस अमृत, ब्रह्म भूलोक भुव लोक और स्वर्लोक है ॥ ६ ॥

जो कोई ब्राह्मण इस अथर्वशिर का अध्ययन करता है, वह अश्रोत्रिय होय तो श्रोत्रिय हो जाता है, उपनयन संस्कार से रहित होय तो उपनयन संस्कारवाला हो जाता है। वह अग्नि से पवित्र वायुपूत, सूर्यपूत, सत्यपूत और सोमपूत होता है वह सब देवों से जाना हुवा और ध्यान किया हुवा होता है। वह सब तीर्थों में स्नान किया हुआ होता है, वह यज्ञों से पूजित, साठ हजार गायत्री के जप वाला इतिहासों और पुराणों में रहनेवाले रुद्रके एक लाख जपवाला होता है, दश लाख प्रणव का जप किया हुआ कहलाता है। उस के दर्शन से मनुष्य पवित्र होता है। वह पूर्वमें हुए सात पीढ़ी के पुरुषों को तारता है। भगवान् ने कहा है कि अथर्वशिर का एक बार जप करने से पवित्र होता है। और कर्म का अधिकारी होता है। दूसरी बार जपनेसे गणों में अधिपतिपन प्राप्त करता है और तीसरी बार जप करने से सत्य स्वरूप ॐकार में उस का प्रवेश होता है ॥ ७ ॥

भक्ति

[ले० श्रीमती बादामो देवी, मैनेजर महिला मण्डल, आश्रम।]

सर्व व्यापक परमात्मा का स्मरण करती हुई, भक्ति के विषय में विचार प्रकट करती हूं। इस संसार में कहीं तप्त बाल-राशि उष्णता कर रही है, तो कहीं हिम-राशि से वेष्टित हिमालय अपनी अलग ही शोभा बढ़ा रहा है। कहीं कल कल विनोदिनी भगवती भागीरथी बह रही है तो कहीं मीलों तक जलदेवके दर्शन नहीं होते, कहीं हास्य रस विलास है, तो कहीं करुण क्रन्दन कर्ण कुहरों द्वारा हमारे मन को म्लान कररहा है। कहांतक लिखें, यह संसार इसी

प्रकार के भिन्न २ तरह की क्रियाओं और पदार्थों का आगार है। क्यों न हो यह उसी जगन्नियन्ता के सत्य संकल्प का फल है, जिसने कहा है कि "एकोऽहं बहु स्याम:" उस एक ने बहुत होकर ही संसार को भिन्न २ पदार्थों में विभक्त कर दिया। अतः हम देखते हैं कि संपूर्ण मानव जाति एक होते हुये भी उसके प्रत्येक व्यक्ति की रुचि भिन्न २ है यही कारण है कि आज संसार में अनेक प्रकार के, मत मतान्तर दृष्टि गोचर होते हैं। प्रत्येक मतवादी अपने मत की पुष्टि में अनेक युक्तियां देकर उसे सर्वोपरि बतलाता है आज मैं भी पाठकों की सेवा में अपने विचारों को उपस्थित करती हूं और उस की सत्यता का प्रमाण उन्हीं की बुद्धिसे मागूंगी। और २ धर्म तो मनुष्य बड़ा होकर बड़ी तर्कना और युक्तियों द्वारा ग्रहण करता है परन्तु मैं जिस धर्म के विषय में लिखने चली हूं वह मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है जो कि इस के शरीर के साथ ही इसे प्राप्त होता है। किसी विज्ञ मनुष्य से छिपा नहीं है कि मनुष्य जब शैशवावस्था में होता है तब उसे माता से किस प्रकार का प्रेम होता है। यह प्रेम मनुष्य के शरीर के साथ पैदा हुआ है और शरीर के साथ ही जायगा। अतः यह विचारना है कि इस प्रेम को किस ओर लगाया जावे जिस से वह अपनी चरमावस्था तक पहुंच जावे। प्रथम तो मनुष्य का प्रेम माता के स्तनों से होता है इसके बाद वह यथाक्रम अपने सम्बन्धियों पड़ोसियों ग्रामवासियों देश वासियों या स्वजातीय जनों से प्रेम करता है। यहां तक संसार के कई एक धर्मों ने अपने प्रेम को फैलाया है परन्तु आर्य महर्षियों के पावनाश्रमों से जब प्रातः काल यह ध्वनि सुनी जाती है कि:—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तुनिरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत ॥

तब भली भांति विदित होजाता है कि संसार के धर्मों का प्रेम किस संकुचित व्रत में आनन्द मानताहै, किन्तु सनातन धर्म हमें बतलाता है कि ऐ मनुष्यो! संसार का प्रत्येक प्राणी तुम्हारे प्रेम का प्यासा है, नहीं नहीं, प्रत्युत प्रत्येक परमाणु तुम्हारा सम्बन्धी और प्रेम पात्र है। अतएव प्रार्थना करो।

मनुष्यास्तृप्यन्तां पशवस्तृप्यन्ताम ।
भूतग्राम चतुर्विधास्तृप्यन्ताम ॥

कितना विस्तृत प्रेम क्षेत्र है, यही कारण है कि जिस समय संसार में उन पवित्रात्मा महर्षियों का शासन था उस समय संसार के प्राणी एक अपरिमितानन्द का आस्वादन करते थे और संसार के शुद्ध मनुष्य अपने प्रेम व्रत को विश्व व्यापी बनाना परमधर्म समझते थे इसका विचार प्रत्येक विज्ञ पुरुष कर सकता है किन्तु शास्त्रकारों ने जैसे कि अनेकानेक विषयों के साधनों का भी बड़ी

उत्तमता से वर्णन किया है इसी प्रकार प्रेम का विस्तार किसी आधार पर होता है यह भी बताया है। मनुष्य अपने शरीर से प्रेम करता है, क्योंकि वह यह जानता है कि यह शरीर मेरा है, इस के बाद माता भ्रातादि सम्बन्धियों से जो प्रेम करता है, उसका भी यही कारण है कि वह यह समझता है कि यह मेरे शरीर के हितू एवं सम्बन्धी हैं सम्बन्ध शरीर से होता है शरीर के जनक माता पिता होते हैं। अतः प्रथम ही प्रथम मनुष्य को मातृ और पितृ पक्ष के मनुष्यों से प्रेम होता है। इससे आगे चल कर वह अपनी मित्रमण्डली से प्रेम करता है। और इसी प्रकार जाति वा देश तक अपने प्रेम को बढ़ाता है। इसका कारण यही है कि वह अपने शरीर का हित इसी में समझता है, एवं अपने माता और पिता के साथ भी अपनी जाति और देश का घनिष्ठ सम्बन्ध समझ कर ही वह जाति और देश से प्रेम का सम्बन्ध स्थिर करता है। किन्तु इससे बढ़कर जब मनुष्य यह विचार करता है कि मेरा अन्तिमोद्देश्य यह है कि अपने संकुचित प्रेम को विश्वव्यापी बनाऊं तब उसे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होनी ही चाहिये कि जिसका उससे एवं विश्व से पूर्ण सम्बन्ध हो। बस, वेदों ने इसी व्यक्ति का इस प्रकार वर्णन किया है:—

द्यावा भूमी जनयन् देव एक आस्ते।
विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।

वेद भगवान् बतलाते हैं कि इस विश्व का कर्ता और रक्षक एक ब्रह्म है, उसी की भक्ति करके अमर हो सकता है। दूसरा मार्ग मोक्ष प्राप्ति का हो ही नहीं सकता। जब मनुष्य के हृदय में यह भाव अपना स्थान बनालेता है, इसी प्रकार विश्वजनक के सम्बन्धियों अर्थात् सम्पूर्ण भूतों का हितैषी बनकर अपने व्यक्तित्व को समष्टि में लीन कर देता है। देश वा जाति से प्रेम वही कर सकता है जिसने अपने शरीर से पूर्ण प्रेम कर लिया हो। ऐसे ही विश्व से प्रेम कर वही मनुष्य अपने मनुष्यत्व को सार्थक कर सकता है, जिसने कि विश्वजनक से पूर्ण प्रेम कर लिया हो। यही कारण है कि श्रुति हमें उपदेश देती है:—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः॥ (बृ ३। ८।१०)

अर्थात् जिस मनुष्य ने इस अक्षर (ब्रह्म) को जान लिया वही सच्चा ब्राह्मण है और जिसने इस को बिना जाने ही मनुष्य जन्म खोदिया वही नीच है। अभिप्राय यह है कि विश्वजनक के आश्रित होकर ही मनुष्य विश्व प्रेमी हो अपने उद्देश को प्राप्त हो सकता है। जो मनुष्य विश्वप्रेम भाव को त्याग कर विश्वजनक की ही सेवा-शुश्रूषा करता है, तभी भक्तिमर्म का नितान्त भेदी हो सकता है:—

श्री कृष्ण चन्द्र उपदेश देते हैं।

यस्मान्नो द्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः सच मे प्रियः॥

उक्तविवेचन से विदित होता है कि विश्व से प्रेम करना मानवोदेश है और (उस उद्देश) का एक मात्र साधन भगवद्भक्ति है। यही कारण है कि महर्षि व्यास ने स्पष्टतया यह घोषित, कर दिया है।

श्रेयस्करीं भक्ति मुदस्यते विभो, क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्धये। तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते, नान्यद्यथा स्थूल तुषावघातिनाम्॥

अर्थात् हे विभो! आपकी भक्ति कोत्याग कर जो केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये उद्योग करते हैं, वह धान के तुषों को कूटने वाले के समान है। भक्ति और प्रेम दोनो पर्याय शब्द ही नहीं प्रत्युत भक्ति एक उच्च और अनन्य प्रेम का नाम है। महर्षि नारद तो उसे अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप बतलाते हैं,।

भक्ति भाव का वर्णन वाणी से किस प्रकार किया जावे? वह हृदय का आनन्द है, हृदय तंत्री वाणी या लेखनी द्वारा किस तरह अपना राग बजा सकती है। इसको गूंगे का गुड़ कहा है,

"मूकास्वादनवत्।"

यह प्रेम की बात है, प्रेम में ज्ञान, अज्ञान, तर्क, वितर्क, हानि लाभ कुछ भी नहीं है। प्रेम की बात प्रेमी ही जानता है दूसरों को उसका पता ही क्या लग सकता है? फिर वह भी ऐसा जो अखण्ड व एक रूप है, जो समस्त विश्व में व्याप्त है। भगवान् सर्वत्र है इसलिए भगवान् के प्रेमी को भगवान् के सिवाय कुछ दृष्टि गोचर ही नहीं होता। जब तक दृष्टि मायावी संसार के रूप, रंग के बखेड़े में लग रही है तब तक प्रेम कहां? प्रेमी को पात २ और अणु अणु में प्रीतम के सिवाय कुछ दिखाई ही नहीं देता। क्या तुम देखते नहीं वह सब में जलवागर होकर सबको प्रकाशित, आकर्षित और मोहित कर रहा है। आप आपनी दृष्टि को संसार की तरफ से फेरने का प्रयत्न करो। माया का खेल तमाशा मदारी पर निगाह नहीं जमने देता। इस प्रकृति की बनी हुई इन्द्रियों और अन्तःकरण से तुम इस माया की रचना पर दृष्टि रखते हो। यह ज्ञान असत्य है यह ज्ञानही नहीं, अज्ञान है। इससे ऊपर उठो, इसके भीतर घुसो, इससे पार निकलो फिर तुम्हारे हृदय की कली खिल जावेगी और तुमको चारों तरफ वही दिखाई देगा। एक प्रेमी ने प्रेम में मस्त हो कर यह राग अलापा है। देखो इसके एक २ शब्द से हृदय, प्रेम से उमड़ कर उसी का अनुभव करने लगता है। इसे कभी २ गाया करो तुमको आनन्द आवेगा और हृदय भगवान् की तरफ बढ़ेगा:-

तेरा यह खेल अपारा है,
जित देखूं तित तूही तू है॥
तूही वन में, तूही घर मंदिर में,
कूप बावड़ी तूही सरवर में।

तू ही सब का करतार भरम से न्यारा है ॥१
इन्द्रियों में, देखा तूही मन है,
शुद्ध करण में तू ही पवन है ॥
वरुणों में तू ही वरुण जलों में गंगा धारा है २।
ज्ञानी में ब्रह्म ज्ञान तू ही है,
योगी का सुख ध्यान तू ही है ।
सबका जीवन प्राण, तूही आधारा है ॥ ३ ॥
फूल पात फल डाल तू ही है,
कालों का महाकाल तूही है ।
परमानन्द प्रकाश शब्द ओंकारा है ॥

अहिंसा ।

(ले० नवलकिशोर ब्रह्मचारी भगवद्भक्ति आश्रम ।)

हिंसि हिंसायाम् धातु से 'अ' प्रत्यय तथा नुम् होकर हिंसा शब्द बनता है। 'हिंसनं हिंसा न हिंसा अहिंसा' । प्राणियों को दुःख देना हिंसा है और उनपर दया करना अहिंसा है । शास्त्र कारों ने, अहिंसा की बहुत महिमा वर्णन की है । इसको सबसे बड़ा धर्म माना है यथा,

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः ।
अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमं तपः ॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परं फलम् ।
अहिंसा परमं मित्रं अहिंसा परमं सुखम् ॥
सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वा प्लुतम् ।
सर्वदानफलं वापि नैतत्तुल्यमहिंसया ॥

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम दम है, अहिंसा परम दान है। अहिंसा परम तप है, अहिंसा परम यज्ञ है तथा अहिंसा ही परम फल है । इसी प्रकार अहिंसा ही परम सुख है । सब तीर्थों में दान करने का तथा स्नान करने का और सर्वस्व दान का भी अहिंसा के समान फल नहीं है ॥ महाभारत में तुलाधार ने जाजलि ऋषि से कहा है ।

वेदाहं जाजले धर्मं सरहस्यसनातनम् ।
सर्वभूतहितं मैत्रं पुराणं यं जना विदुः ॥

हे जाजले ! जो सनातन धर्म है, उसको मैं रहस्य के साथ जानता हूं । यह पुराण धर्म यह है कि प्राणी मात्र का भला करना और सब के साथ मित्र भाव का वर्ताव करना ।

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिः स परो धर्मस्तेन जीवामि जाजले ॥

किसी भी प्राणी से द्रोह किए विना अथवा आपत्ति काल में थोड़ा सा द्रोह करके अजीविका चलावे, इसका नाम उत्तम धर्म है। हे जाजले ! ऐसी ही आजीविका से मैं अपने जीवन को बिता रहा हूं ॥

अहिंसा को परम धर्म अर्थात् सबसे श्रेष्ठ धर्म कहा है । अहिंसा धर्म में सब धर्मों का समावेश होजाता है । जैसेः—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः ।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते ॥

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है

तथा अहिंसा परम सत्य है और अहिंसा से ही धर्म की प्रवृत्ति होती है ॥

मनुजी ने भी सब वर्णों के नीति धर्मों में अहिंसा को ही सर्व-श्रेष्ठ माना है यथाः-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी "अहिंसा सत्य मक्रोधः" और "अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च" इत्यादि वचनों से अहिंसा की ही श्रेष्ठता का प्रतिपादन होता है। पातञ्जल योग शास्त्र में भी यमों की गणना में अहिंसा की प्रधानता मानी है।

"अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यम परिग्रह, इत्यादि

अहिंसा का फल।

पातञ्जल योगाशास्त्र में लिखा है

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।

जिस मनुष्य का अहिंसा धर्म सिद्ध होजाता है उससे सब प्राणी वैर छोड़ देते हैं। यह जब होता है जब मनुष्य सब को अपना आत्मा समझ कर सबसे प्रेम करता है। इस अवस्था में हिंसक जीव, सिंह व्याघ्रादि, सब उससे वैर त्याग देते हैं। सब लोग जानते हैं कि ऋषि मुनियों के आश्रमों में सिंह आदि जानवर बिना किसी को कष्ट दिए रहा करते थे। बात भी ठीक है। उन में भी हमारा जैसा ही आत्मा है, वह भी उसी प्रेम से पूर्ण हैं जिस से हमारा हृदय पूर्ण है। उनके दिल में हमारे प्रति भय और प्रेम दोनों हैं और साथ ही यह बात भी है कि वह हमसे अधिक डरते हैं और अपने भय की शंका से ही वह मनुष्य पर आक्रमण करते हैं। यदि हमारे चित्त से हिंसा का भाव सर्वथा दूर हो जाय तो फिर वह निःशंक हमारे साथ मिलकर बैठ सकते हैं। कहते हैं कि मनुष्य भगवान् का रूप होने से जानवरों को बड़ा प्यारा मालूम होता है। वह इससे मिलकर हर्ष मनाते हैं, परन्तु मनुष्य की अपनी ही हिंसा-वृत्ति ने इसको अपने आत्मीय बन्धुओं से पृथक् कर रक्खा है तुलसीदास जी भी कहते हैं:-

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

कहते हैं अभयदान देने से ही अभयपद की प्राप्ति होती है। जिसने भगवान् के विराट् रूप को अपना आपा समझ लिया उसका कौन धर्म शेष रह गया। उसके मुक्त होने में क्या सन्देह है। अहिंसा धर्म्म सब धर्म्मों का सार और मोक्ष-मार्ग का अन्तिम साधन है। महाभारत में कहा है:-

तपोभिर्यज्ञदानैश्च वाक्यैः प्रज्ञाश्रितैस्तथा।
प्राप्नोत्यभयदानस्य यद्यत्फलमिहाश्नुते ॥

तपस्या से, यज्ञों से, दानसे, सत्य बोलने से और चतुरता से बर्ताव करने से जो फल मिलता है, वही फल अभय-दान देनेसे मनुष्य को मिलता है।

लोके यः सर्वभूतेभ्यो ददात्यभयदक्षिणाम् ।
स सर्वयज्ञैरीजानः प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम् ॥

जो मनुष्य सब प्राणियों को अभय देता है उस को सब यज्ञों का फल मिलता है, और अन्त में फल रूप में वह स्वयं भी अभयत्व पाता है ।

न भूतानामहिंसाया ज्यावान् धर्मोस्ति कश्चन ।

प्राणियों में अहिंसा धर्म से श्रेष्ठ और कोई धर्म नहीं है ।

यस्मान्नोद्विजते भूतं जातु किंचित्कथंचन ।
सोऽभयं सर्वभूतेभ्यः सम्प्राप्नोति महामुने ॥

जिस से कोई भी प्राणी, किसी प्रकार कभी भी उद्विग्न नहीं होता है उसको हे महा-मुनि ! सब प्राणियों से अभय मिलता है ।

सर्वभूतेषु यो विद्वान् ददात्यभयदक्षिणाम् ।
दाता भवति लोके स प्राणानां नात्र संशयः ॥

जो पुरुष प्राणियों को अभय दक्षिणा देता है, वह निस्सन्देह प्राण देता है ।

कुछ लोगों का यह मत है कि अहिंसा धर्म वेद-प्रतिपादित नहीं है, परन्तु यह उनकी भूल है ।

ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते ।
अहिंसालक्षणं धर्मं वेद प्रामाण्यदर्शनात् ॥

हे महामते ! ऋषि, मुनि, ब्राह्मण और देवता अहिंसा धर्म की प्रशंसा वेदोक्त प्रमाणों से करते हैं ।

बहुत से मनुष्य यज्ञ में पशु-हनन पुण्य जनक मानते हैं, परन्तु यह बात वेद-शास्त्रों से प्रतिपादित नहीं होती है । यजुर्वेदके प्रथम मन्त्रमें भगवान् उपदेश करते हैं:-'यजमानस्य पशून पाहि' यजमानों के पशुओंकी रक्षाकर इत्यादि । यह बात स्वतः सिद्ध है, क्योंकि जब पशु मारे जायंगे, तो घृत कहां से मिलेगा ? क्योंकि घृतादि से ही तो यज्ञ आदि होते हैं। प्राचीन समय में अगस्त्य ऋषि ने पूजा का हित करने की इच्छा से वन के सब पशुओं को देवार्पण करने के लिए तप से प्रोक्षण किया था, अर्थात् यज्ञ करके भी उन का वध नहीं किया था, किन्तु उनके चारों ओर अग्नि फिरा कर ही उन्हें छोड़ दिया था । इस से विदित होता है कि यज्ञ में पशु नहीं मारे जाते थे ।

सुरा मत्स्याःपशोर्मांसं द्विजादीनां बलिस्तथा ।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद्वेदेषु कथ्यते ॥

सुरापान, मत्स्य, पशु आदिकों का मांस और द्विज आदिकों की बलि यह यज्ञ में धूर्त पुरुषों ने प्रवृत्त करलिया है, किन्तु वेद में नहीं कहा है ।

इज्या यज्ञ श्रुतिकृतैर्यो मार्गैरबुधोऽधमः ।
हन्याज्जन्तून् मांस गृध्नु स वै नरक भाङ्नरः ॥

जो मूढ़ और अधम पुरुष यज्ञ के बहाने से मांस खाना चाह कर देव पूजा के लिए अथवा यज्ञ में जीव-हिंसा करता है, वह नरक में पड़ता है । नारद जी कहते हैं कि जो पुरुष परमांस से स्वमांस की वृद्धि करना

चाहते हैं, वे इस लोक में तथा परलोक में दुःख के भागी बनते हैं और जो मरे हुए जीवों का तथामोल लेकर मांस खाता है, वह भी पाप का भागी बनता है।

येऽहि खादन्ति मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम् ।
हतानां वा मृतानां यथा वा हन्ता सर्वत्र सः॥
धनेन क्रयिको हन्ति खादकश्चोपभोगतः ।
घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो वधः ॥

जो मनुष्य जीवित प्राणियों को मारकर अथवा मरे हुए का मांस खाता है, उसे भी मारने वाला ही समझना चाहिए। बिकते हुए मांस को धन से खाने वाला उपभोग से, और मारने वाला हनन से हिंसा करता है। यह तीन प्रकार का वध है। इस लिए मांस खाने का हिंसक का कर्म किसी को भी नहीं करना चाहिए। महाभारत में भीष्म जी युधिष्ठिरसे कहते हैं कि हे राजन्! जो मांस त्याग देते हैं, उन का फल तू मुझ से सुनः—

यस्तु वर्षसहस्रं हि तपस्तप्येत् सुदारुणम् ।
यश्चैव वर्जयेन्मांसं सममेतन्मतं मम ॥

जो पुरुष सहस्र वर्ष पर्यन्त दारुण तप करता है और जो मांस त्याग देता है, मैं उन दोनों को समान समझता हूं।

हिंसाके बराबर पाप नहीं है और अहिंसा के बराबर धर्म नहीं है, यह सब मतों का सिद्धान्त है। अहिंसा-धर्म के प्रभाव से राजा शुद्धोदन के राजकुमार ने भगवान् बुद्ध की पदवी पाई और चीन, जापान, ब्रह्मा, आसाम सुमात्रा, जावा इत्यादि देश देशान्तरों में अहिंसा धर्म का प्रचार किया। बालक ध्रुव ने सब को अपना आप समझ कर हिंसा वृत्ति का त्याग कर दिया था, तभी तो वह सिंह और व्याघ्रादि के बीच आनन्द से रह सका था।

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिये उस अलख को लखने के अर्थात् अपनी आत्मा को साक्षात्कार करनेके लिये जो अणु अणुमें व्याप्त हो रहा है, हम को द्वेषवृत्ति को अपने अन्तः-करणसे निकाल देना चाहिए। जब हमारा हृदय हिंसा से शून्य हो जायेगा तो उस ज्योतिर्मय प्रकाशस्वरूप, अनन्त अपार और आनन्द स्वरूप भगवान् के दर्शन आप ही हो जायेंगे। अपना और पराया भाव टूट जायगा। सब जगह एक ही आत्मा दृष्टिगोचर होगा। फिर मैं और तू का भेद न रहेगा। मैं ही मैं या तू ही तू रह जायगा। फिर कौन किस से द्वेष करेगा और कौन किस को मारेगा? ऐसी वृत्ति होने पर सिंह और बकरी में भेद न रहेगा। इन कल्पित माया के रूप रंगोंसे पीछा छूट जायगा। फिर आनन्द से यह शब्द उच्चारित होंगे।

भेद भावना मिट गई, क्लेश भये सब दूर।
जित देखूं उत दीखता, महादेव भरपूर॥

भक्ति—प्रिय पाठक-गण! भक्तिका १२वां अङ्क आप की सेवा में उपस्थित है। यह इस वर्ष की अन्तिम भेंट है। आगामी विजया दशमी से भक्ति का नवीन वर्ष आरम्भ होगा। भक्ति ने क्या काम किया इस के लिए कुछ कहना या लिखना कागज, कलम का खर्च और समय के नष्ट करनेके अतिरिक्त कुछ अर्थ नहीं है। भक्ति के पाठक इस को आप जानते हैं। आप लोगों को हमारी सेवा से सन्तोष हुआ या नहीं इसका हमको प्रत्यक्ष ज्ञान तो बहुत कम है कारण हमारे निवेदन करने पर भी आप लोगों ने अपनी रुचि और हमारे कर्तव्य की हमको सूचना नहीं दी परन्तु हम अपने कर्तव्य को आप भली प्रकार जानते हैं उस के आधार पर हम मानते हैं कि हमने अपने कर्तव्य में बहुत कमी की है इस कमी का कारण शक्ति-हीनता, आलस्य और प्रमाद के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आप लोगों को भी हमारे काम से सन्तोष नहीं हुआ इस का अप्रत्यक्ष ज्ञान हमको इस तरह है कि भक्ति के परिवार की संख्या नहीं बढ़ी। अपने कर्तव्य की तरफ दृष्टि करते हुए हम पाठक-गण की उदारता और प्रेम को धन्यवाद देते हैं जो उन्होंने भक्ति के अपनाने में की है। हम जानते हैं, हमारे बहुत प्रेमियों व मित्रों ने हमारे प्रेम और सहानुभूति के कारण ही भक्ति को अपना रक्खा है। यह उनकी बड़ी कृपा व सहायता है जो उन्होंने हम को इस सेवा के काम में अवसर देने के लिये की है। अपने इच्छित स्वधर्म को पालन करने में हम को जो सहायता मिली है उस के लिये हम अपने प्रेमियों के कितने कृतज्ञ व आभारी हैं यह लिखने की बात नहीं है, इस को हमारा हृदय ही अनुभव करता है इस के लिए शब्दों में फिर कृतज्ञता प्रकट करने के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है।

आगामी वर्ष भक्ति का सम्पादन व प्रकाशन कैसा होगा इसके लिए पूर्ण सत्य तो यह है कि यह सब भगवान् की दया पर निर्भर है, भविष्य केलिए हमारा किसी प्रकारका दावा करना असत्य मिला सत्य ही होसकता है। कौन जानता है कल क्या होगा? जब यह समस्त ब्रह्मांड भगवान् की दया पर निर्भर है फिर मनुष्य का इस सम्बन्ध में कुछ कहना एक प्रकार से झूठका प्रचार और झूठी आशा दिलाना है अतः हम केवल यह कहते हैं कि "जो भगवान् की मरजी होगी वही होगा"। हां हम अपने विचार प्रकट किए देते हैं कि हमारे इस सम्बन्ध में क्या विचार है। "हमारा हृदय आशा से पूर्ण है, इस तुच्छ सी सेवा से भगवान् की बहुत दया हुई है, मन में उत्साह है और काम में विश्वास है, भविष्य बहुत उज्वल दिखाई देता है। हृदय कहता है कि भक्ति की बहुत उन्नति होगी। प्रयत्न करने का विचार है। उत्तम लेख निकालने और उज्वल छपाई करने की तरफ पूरा ध्यान है। पृष्ठ संख्या बढ़ाई जावे और होसके तो चित्र भी निकाले जावें

यह सब मन के संकल्प दृढ होते जाते हैं और भगवान् पर पूरा भरोसा है कि सफलता होगी"।

अपील।

आप लोगों से अपील करने से पहले हम आपका ध्यान इस उद्देश की तरफ दिलाना चहते हैं कि आप हमको और अपने को इस सम्बन्ध में पृथक् न समझें। भक्ति के सेवक पाठक सब एक परवार हैं। किसी को अधिक कर्तव्य है और किसी को कम। इस नियम को हृदय में धारण करके आप में से जो भक्ति के आद्योपान्त पाठक व प्रेमी हैं उनसे हमारा यह निवेदन है कि परोपकार को लक्ष और कर्तव्य मानकर औरों को भी भक्ति पढ़ने की प्रेरणा व उद्योग करें। एक दो व्यक्ति को अपने प्रेम प्रभाव से अपना साथी बनालेना कुछ कठिन नहीं है। इन से आगे चलकर हमारे वह प्रेमी हैं जो सन्तुष्ट न होने पर भी भक्ति को अपनाए हुए हैं, उनसे हमारा यह कहना है कि आप कुछ धैर्य और सन्तोष रखकर इसके प्रेमी बने रहें कुछ दिन में आप को सन्तोष भी होजावेगा और आपको अपूर्व लाभ भी प्राप्त होगा। आप उकता न जावें और इसदो रुपया वार्षिक खर्च को व्यर्थ न समझें और नहीं, तो हमारे कहने ही से इसको अपनाए रहें, इससे आप के आनन्द की वृद्धि होगी। यह लाभ का काम है। भक्ति आपको और आप के कुटुम्बी व प्रेमियों को भगवान् का नाम याद दिलावेगी। भगवान् की महिमा और उसके नाम का एक श्लोक व भजन सुनने, पढने और याद करने के पुण्य की क्या तुलना है? यह तो गुड़ है इसको किधर ही से खाइए मीठा ही मीठा है, इसमें तो आनन्द ही आनन्द है। भक्ति का कोई भी प्रेमी कम नहीं होना चाहिए और भक्ति का एक भी वी० पी० वापिस नहीं आना चाहिए और जिस प्रकार भक्ति के काल की अवधि दुगनी होगई है इसी तरह भक्ति के प्रेमियों की संख्या भी दुगनी होजानी चाहिए। इससे शक्ति दुगनी होजावेगी फिर कर्म भी उतना ही बढ़ जावेगा। आशा है आप अपने इस काम को पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। भगवान् हमारी सहायता करें।

ग्राहकों से—ग्राहक नं० १ से १८२ तक का वर्ष इसी अंक के साथ समाप्त होता है उन के नाम नया अंक वी. पी. द्वारा भेजा जावेगा यदि मनीआर्डर से दाम भेजदिए जावें तो बचत हो जावेगी।

कुछ अनुभूत प्रयोग।

सैंधा नमक १५ तोला सफेद मि० ५ तोला, काला नमक २ तो० इन सब का चूर्ण कर इस में निम्बुसत्व २॥ तो० पेपरमेन्ट २ मासा पीसकर मिलावे। यह चूर्ण अजीर्ण मन्दाग्नि उदर रोगादि को दूर कर भूखलगाता है। यह स्वादिष्ट भी बहुत है। अनुभूत है।

दाद नाशक मरहमः-वेसलीन १ सेर में गोवा पाउडर २ औंस मिला कर डिब्बियों में भर कर रख छोड़े दिन में ३ बार दाद पर धीरे धीरे मलें १ हफ्ते के अन्दर नई व पुरानी दाद शर्तिया मिट जाती है अगर दाद चली जावे तबभी कुछ रोज तक इस दवाको लगाते रहें ताकि जड़ नष्ट होजावे।

कर्ण पीड़ा परः-एक छोटी बर्गद (बड़) की टहनी के सिरों को अंगुठे की मोटाई के अनुपात १ बालिस्त तोड़ कर भूभल में खूब भूने फिर उस के सिरों को पकड़ कर ऐंठ देवें जब उस में से रस की बूंदे टपक ने लगें तो वही गर्म २ अर्क कान में दो तीन बार डाल दें दर्द तुरन्त दूर होगा यह परीक्षित है इस में थोड़ी भुनी हींग मिलादे तो और भी उत्तम है।

हैजा कालेरा-प्याज का रस १ तो० निकाल कर काली मिर्च और छोटी इलायची सम मिला कर भाग रोगी को पिलाने से उसी वक्त दस्त के बन्द होते है प्यास लगाने पर शहद का शर्बत बना कर देना चाहिए।

दंत रोग परः-बादाम का छिलका जलाया हुआ और खाने का नमक चूल्हे की जली हुई मिट्टी सम भाग कपड़ छान कर मञ्जन करने से दान्त मजबूत होते हैं।

मलेरिया ज्वर परः-कार्बोलिक एसिड १ भाग कपूर ५ भाग दोनों को मिला शीशी में भर बड़ी काक लगा धूप में रख देने से जलवत होजावेगा इस की चार पांच बूंद बताशे में डाल कर ३ दिन देने से ज्वर दूर होता है।

शतपुष्पा (सौंफ) १॥ तोला, बड़ी हरड़ की छाल बहुत वज़नदार १॥ तोला, सुपारी जो पान में खाते हैं १॥ तोला इन सब को कूट कर किसी मोटी छलनी से छान कर रात्रि को १ सेर पानी डाल मिट्टी के बर्तन में भिगो दें। प्रातःकाल उसी बर्तन को चूल्हे पर चढ़ाय पकावें एक पाव रहने पर नीचे उतार गुनगुना गुनगुना ही किसी पतली के बर्तनमें छान लें।

नोट-छानते समय कोरा खद्दर लेना होगा। जब एक जगह से उस वस्त्र में छान लिया जावे तब दूसरी जगह से छानना चहिए यानी उस छाने हुए स्थान को छोड़ फिर दूसरी जगह से छानें जितने आप दस्त चाहें। उतनी ही बार छान कर पीयो उतने ही दस्त लगेंगे।

हीरानन्द ब्रह्मचारी

भजन।

निर्बल के प्राण पुकार रहे जगदीश रहे जगदीश हरे। श्वासों के स्वर झनकार रहे, जगदीश हरे०॥ १॥

आकाश हिमालय सागर में, पृथ्वी पाताल चराचर में। यह मधुर बोल गुंजार रहे, जगदीश हरे०॥ २॥

जब दया दृष्टि हो जाती है, जलती खेती हरीयाती है। इस आश पै जन उच्चार रहे,

जगदीश हरे० ॥ ३ ॥
सुख दुःखों की चिन्ता है नहीं, भय है विश्वास न जाय कहीं । टूटे न लगा यह तार रहे, जगदीश हरे० ॥ ४ ॥
तुम हो करुणा के धाम सदा, सेवक है राधेश्याम सदा । बस इतना सदा विचार रहे, जगदीश हरे० ॥ ५ ॥

२

जगदीश तुही धन धन है ॥ टेक ॥
तू सत् चित् आनन्द घन है, दुष्टों का मान मर्दन है, भक्तों का प्राण जीवन है । है तू दीनों का दयाल, साधु सन्तों का प्रतिपाल । सर्वत्र तेरा वर्णन है ॥ १ ॥
रज्जाक़े हरदा आलम तो, मुश्ताक़े रहीम रहिम तो । खल्लाक़ो शादो खुर्रम तो खुदरा उरशाक़ो महबूब, हरजा जल्वा फ़िगन मरगूब, हर्चं मख़फ़ियो रोशन है ॥ २ ॥
ओ गॉड वी काइन्ड टू मी नाऊ, ओय हम्बिल क्रीवर टूटी बाऊ । फोरगिव माई सिन्स ओ दाऊ, दाऊ आर्ट माई गॉड, दाऊ आर्ट माई लॉर्ड, दाई इक्वल ट्रेअर नन है ॥ ३ ॥
सरदारा मैंनू भांदा, बागों देविच नहीं आन्दा । दीदों दे बिन जी जांदा, मैंनू कर करके बेहाल । घुलदा गैरोंदे नित नाल, तुसी मते गुणांदी खन है ॥ ४ ॥
आमार बाड़ी मोती आवे, चांदान कोरवे ज्वल खावे, बेला-सारंग बजावे, गावे गावे मीष्टि तान, आमार जीव नेर प्रान, आमार तुमी तोन मोन है ॥ ५ ॥
हर लिहेसी मनई मनचाहे, भटकायेसी बन बनदाहे, दौं लागेसी तन मनदाहे, एस् एस्टुनहा बीन, जियरा कर लिहेसी आधीन, टंडाननीक एहि खन है ॥ ६ ॥
म्हां की थां की यारी छै, थां की गढ सिरदारी छै, विनती थां से म्हारी छै, पेंडे महिल्या आजो । ढोलो भांगलो पिलाजो, अन्नदाता थाने सौगन है ॥ ७ ॥
त्रैलोक्य पतिं वन्देऽहं, करुणायतनं भुवनेशं कृपया कुरु मे निःक्लेशं, यत्र यत्र राधेश्याम तत्र तत्र पानुयां, इदमिदं देव अर्पण है ॥ ८ ॥

३

मेरे भोला शरण में बुलालो मुझे । घेरा माया ने नाथ बचालो मुझे ॥ टेक ॥
चित्त चंचल ये तुम्हारे प्रेम पथ से फिर गया । आके अवनति में पड़ा उन्नति के पथ से गिर गया । पड़ा रोता हूँ आके उठालो मुझे ॥ १ ॥
कर्म कीचड़ में फंसा निःशक्ति हिल सकता नहीं । बस इसी कारण से प्रभु का दर्श मिल सकता नहीं । आओ वेग कृपालो निकालो मुझे ॥ २ ॥
है सभी संसार स्वारथ का लऊं किस की शरण । शान्ति दायक विश्व में केवल तुम्हारे ही चरण । दुःखी जान हृदय से लगालो मुझे ॥ ३ ॥
तुम पिता मैं पुत्र हूं तुम बिम्ब मैं प्रतिबिम्ब हूं । ब्रह्म तुम मैं जीव सब विधि आपके अवलम्ब हूं । इसी नाते से नाथ निभालो मुझे ॥ ४ ॥

जीत लूं मन इन्द्रियों को नाथ ऐसी शक्ति दो।
सर्व बाधा से रहित निष्काम अपनी भक्ति दो।
भिक्षा अपनी ही भक्ति की डालो मुझे ॥५॥
नीच नर पशु नार की निर्गुण निकम्मा आलसी।
चित्त चुराता आप से है पाप में बुद्धि फंसी।
कालव्याल से नाथ छुड़ालो मुझे ॥ ६ ॥
दीन जन पापी प्रतापी मोह निशि से दोजगा।
भक्ति अपने चरण पंकज की में इस को लो लगा। अपना जान के जन अपनालो मुझे ।७।

४

है ज्ञानियों के लब पर यारब कलाम तेरा।
और योगियों के दिलमें बसता है नाम तेरा॥टेक
वेदों को जब विचारा हुआ भेद आशकारा।
बेखुद हुवा है पीकर उलफ़त का जाम तेरा १
है लोक में भी तू ही परलोक में भी तू ही।
यह भी मकान तेरा वोह भी मुकाम तेरा ।२॥
जलचर भी तुम को जपते, वनचर भी तुम को रटते। और शाख गुलपै बुलबुल गाती है नाम तेरा ॥ ३ ॥
खाली न जाऊं मैं भी, हिस्सा मुझेभी पहुंचे।
है फैज़ाम तेरा और मैं गुलाम तेरा ॥ ४ ॥

५

भाव के भूखे हैं भगवान् ।
भाव न हो सच्चा जो उर में, तो सब व्यर्थ विधान ॥ १ ॥
भाव नहीं तो मनुज देह यह, जीवन मुक्त समान।
भाव शून्य आदर सब दूखा, दूखा, है सम्मान।
सत्य हृदय का शुद्ध भाव ही, जग में परम प्रधान ॥ ४ ॥
भाव होय तो ईश्वर दीखे, भाव बिना पाषाण ५

६

गजानन लम्बोदर दातार ॥ टेक ॥
रमत भंवर गणपति गिरिजासुत, रिध सिध के भर्तार ॥ १ ॥
वक्र तुण्ड शोभित कर सुन्दर, वाहन मूप सवार।
कनक छत्र शिर चंवर डुलावै राजत भुजवर चार ॥ २ ॥
हेम सुता पति सुत गण नायक अन धन भरत भन्डार ॥ ४ ॥
सिन्दूर अक्षत पुष्प चढ़त अति, भोग मोदक विचार ॥ ५ ॥
युग कर वन्दित हर्ष कहत हों, दोजी भवसागर तार ॥ ६ ॥

७

डगमग डोले दीनानाथ नैय्या भवसागर में मेरी ॥
मैंने भर भर जीवन भार, छोड़े तन मोहत बहुवार।
पहुंचा एक नहीं उस पार, यह भी काल चक्र में घेरी ॥ १ ॥
टूटा मेरुदण्ड पतवार, पाते चहुं चले ना ज्यार।
मानी मन मांझी ने हार, करसे दुर्गति रात अंधेरी ॥ २ ॥
उमगे पुंज जग नजर भुजंग, कटके पटके पाप तरंग। पड़कर पाप कर्म के संग, करती फिरती है चकफेरी ॥ ३ ॥

ठोकर अचलाचल खाय, हट कर डूब जायगी हाय । शंकर अब तो पार लगाय, तेरी मार सही बहुतेरी ॥ ४ ॥

८

श्रीराधे रानी दे डारो ना बंसरी मोरी ॥टेक॥
जिस बंशी में मोरे प्राण बसत हैं, सो बंशी यगी चोरी ॥ १ ॥
सोने की नाहीं कान्हा रूपे की नाहीं, हरे हरे बांस की पोरी ॥ २ ॥
काहेसे गाऊं राधे काहे से बजाऊं, काहे से लाऊं गैय्या घेरी ॥ ३ ॥

मुख से गावो प्यारे ताल से बजाओ, लकुटी से लाओ गैय्या घेरी ॥ ४ ॥
चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण छवि, हरि चरणन की चेरी ॥ ५ ॥

९

दिलबर पास बसदा ढूंढन किथे जावना ।टेक।
गली ते बजार ढूंढो, शहर ते दयार ढूंढो ।
घर घर हजार ढूंढो, पता नहीं पावना ॥ १ ॥
मक्के ते मदीने जाइये, मत्थे चाहे मसीत घसाइये ।
ऊंची फूक बांग सुनाइये, मिल नहीं जावना ॥
गंगा भावे जमना न्हावो, काशी ते प्रयाग जाओ
बद्री केदार जाओ, मुड़ घर आवना ॥ ३ ॥
देश ते दशोर ढूंढो, दिल्ली ते पशोर ढूंढो ।
भावें ठौर ठौर ढूंढो, किसे न बतावना ॥४ ॥
बनो जोगी ते बैरागी, संन्यासी जगत त्यागी ।
प्यारे से न प्रीति लागी, भेष की बटावना ५ ।
भावें गले माल डाल, चंदन लगाओ भाल ।
प्रीति नहीं सांई नाल, जगत मुंह दिखावना ६
मोमनादि शकल बनावें काफ़ां दी कम्म कमावें ।
मत्थे ते महराब लगावे, मौलवी कहावना ॥१।

१०

मनवा रंगाये रंगाये जोगी कपरा ॥ टेक ॥
आसन मार मन्दिर में बैठे, नाम छांड़ पूजन लागे पथरा ॥ १ ॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ाले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी हैगये बकरा ॥ २ ॥
जंगल जाय जोगी धुनियां रमोले, काम जराय जोगी बन गये हिजरा ॥ ३ ॥
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रंगोले, गीता बांच के हैगये लबरा ॥ ४ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जम दरवजवा बांधन जाहरे पकरा ॥ ५ ॥

११

राम जन मन रञ्जन राम, राम भव भय भञ्जन राम । राम खल दल गंजन राम, सीताराम सीताराम ॥

दुष्ट निकन्दन आनन्द कन्दन, दशरथ नन्दन राम । रघुकुल के पति राम, निर्बल के बलराम । निर्धन के धन राम, सीताराम सीताराम ॥
वृथा की छोड़ के सब धूम धाम राम कहो । विचरते जागते सोते तमाम राम कहो । जो

तुम तो चाहिये आराम राम राम कहो । मेरे तो इक राम, भजतेरे मन राम सीताराम सीताराम ॥

समालोचना ।

कल्पवृक्ष—मासिक पत्र, आकार डिमाई अठपेजी, पृष्ठ संख्या ३२, छपाई सफाई ठीक है। सम्पादक श्री दुर्गाशंकर जी नागर । वार्षिक मूल्य २॥)

इस पत्र की पाँचवें वर्ष की दसवीं संख्या हमारे सामने है। सब लेख आध्यात्मिक हैं, विशेषतः योग या मेस्मेरिज़म-सम्बन्धी । पत्र आध्यात्मिक जनों के काम का है। वस्तुतः ऐसे आध्यात्मिक तथा धार्मिक पत्रों की उन्नति विशेष वाञ्छनीय है।

पत्र-पुष्प—आकार २०×३०, १६ पेजी पृष्ठसंख्या ७०। प्रकाशक सत्सङ्ग-भवन बम्बई । मूल्य केवल ।)

यह भजनों की सुन्दर पुस्तक है। छपाई सफाई भी बड़ी सुन्दर है। सब भजन भक्ति रस से पूर्ण हैं। चेतावनी, उद्बोधन, विनय, प्रेम, अद्वैत और प्रकीर्ण नामक शीर्षकों में भजनों को विभक्त किया गया है। इस भजन पुस्तक की भगवद्भक्तों ने कैसी कुछ कदर की है यह इसी से जाना जा सकता है कि इसका पहला संस्करण शीघ्र ही समाप्त होगया है और दूसरा संस्करण निकाला गया है। कई रंगीन और सादे चित्रों से पुस्तक की शोभा और भी बढ़ गई है। पद बड़े ललित हैं।

सूचना ।

अबकी बार भक्ति के टाइटिल का कागज समय पर न आसका। यदि टाइटिलके कागज की प्रतीक्षा करते तो भक्ति का समय पर प्रकाशित होना असम्भव था। अतः विवश होकर इसी कागज पर टाइटिल छापना पड़ा। आशा है पाठकगण क्षमा करेंगे।

मैनेजर

प्रार्थना ।

अयि देव दीनबन्धो करुणानिधे नमस्ते ।
आधारखिल जनस्य महतो महामहस्ते ॥१॥
वेदैः प्रगीतमस्ति महती तव प्रशस्तीः ।
धन्या त्वदीय शक्तिः सततं ततं यशस्ते ॥२॥
प्राणाः पवन स्वरूपाः धरणी हि पादरूपा ।
उदरं खगोल कूपः सिद्धं विराड् वपुस्ते ॥३॥
भगवन् ! त्वमेव कर्त्ता भर्त्ता तथा च हर्ता ।
जगतोऽखिलस्य धर्मा सर्वत्र भो लसस्ते ॥४॥
ध्यानैरपि रगम्या गीता तथापि नम्या ।
ईश्वर ! त्वमेव धन्यः कथिता स्वयम्भवस्ते ॥५
शर्मास्ति तेऽनुरक्तः सेवी तथा अशक्तः ।
भावत्कुभाव भक्तः भजते फलं महस्ते ॥६

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और विज्ञापन व पुस्तक सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

विषय सूची।

नं०	विषय	
१.	मङ्गलाचरण।	
२.	भक्तों के चरित्र।	
३.	प्रह्लाद और बुद्ध मुनी का सम्वाद। (ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी)	
४.	याज्ञवल्क्य का जनक को उपदेश।	१०
५.	अथर्वशिरोपनिषद्।	१५
६	भक्ति। (ले० श्रीमती बदामो देवी)	१८
७	अहिंसा। (ले० नवल किशोर ब्रह्मचारी)	२२
८	भक्ति।	२६
१०	कुछ अनुभूत प्रयोग। (ले० हीरानन्द ब्रह्मचारी)	२७
११.	भजन।	२८
१२.	समालोचना।	३२
१३	सूचना।	३२

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ॥)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य =)॥।

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य ।=)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य =)।

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय हैं फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथक्कड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ॥=) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संग्रह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संग्रह है। वेदान्त विषय की उच्च कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य ।=)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।